Chap-8

अष्टम् अध्याय

बदलते पारिवारिक संबंधों के कारण विघटन का साठोत्तरी कहानी के शिल्प पर प्रभाव

अष्टम् अध्याय

बदलते पारिवारिक संबंधों के कारण विघटन का साठोत्तरी कहानी के शिल्प पर प्रभाव

कहानी मात्र किस्सेबाजी नहीं है, क्योंकि न तो वह कुछ मनोरंजक घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करती है अथवा न ही कुछ विशिष्ट पात्रों के चरित्रांकन द्वारा पाठकों को चमत्कृत करने का प्रयास होती है। कहानीकार की सैद्धान्तिकता, उसकी वैचारिकता और मानसिकता का पात्रों और घटनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति भी कहानी नहीं है। कहानी एक अर्थ है, इसी अर्थ को कहानीकार कहानी के माध्यम से व्यंजित करता है। इस अभिव्यंजना के लिए विशिष्ट रूपाकार की माँग होती है। इसी रूपाकार या शिल्प द्वारा कहानीकार समयसंगत पात्रों और घटनाओं को चित्रित करके अपने अंतिम बिंदु तक पहुँचता है, चाहे वह निर्णयात्मक हो या सांकेतिक।

शिल्प कहानी का एक महत्वपूर्ण तत्व है। कथ्य या मूल्य वस्तु का तो अपना महत्व असंदिग्ध है ही, परन्तु कहानी में इसके अतिरिक्त भी कुछ अपेक्षा की जाती है। इस 'अतिरिक्त' अपेक्षा पूर्ति के लिए कहानीकार कुछ उपकरणों का युक्तिपूर्वक प्रयोग करता है। इन्हें ही शिल्प कहा जा सकता है। इस प्रकार शिल्प एक माध्यम है जो कलाकार की अनुभूति को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। शिल्प स्वयं में कोई निरपेक्ष इकाई नहीं है। प्रत्येक अनुभूति को अभिव्यक्ति के लिए उसके अनुरूप एक सक्षम रूप या माध्यम चाहिए, जिससे वह एक प्रभावी कृति या रचना कर सके।

डॉ. नामवरसिंह के शब्दों में - "कहानी के शिल्प को कथानक, चरित्र, वातावरण आदि अलग-अलग अवयवों के रूप में देखने के हम आदी हो गये हैं। कहानी के रचना-विधान को एक यंत्रक्रिया की भाँति सुनिश्चित माना गया। इस तरह कहानी एक सम्पूर्ण इकाई न होकर जीवन जीती रही।"[1]

पश्चिम के आलोचकों ने शिल्प (Craft) को एक जरूरी माध्यम के रूप में चित्रित किया है। वस्तुतः शिल्प समय-समय पर परिवर्तन होने वाला माध्यम है, जिसे लेखक अपनी सुविधा और आवश्यकता के अनुसार बदलता रहता है। वैसे इससे किसी लेखक की पहचान भी बनती है। इसलिए 'लुकास' ने तो शिल्प को रचनाकार की त्वचा कहा है। (Style is the skin of a writer.)

'शिल्प' शब्द अंग्रेजी के 'क्राफ्ट' के पर्याय रूप में प्रस्तुत किया जाता है। 'न्यू वैब्स्टर डिक्शनरी' के अनुसार 'क्राफ्ट' का अर्थ है : कौशल, शक्ति, क्षमता, कोई कार्य जिसमें कौशल अपेक्षित हो, दस्तकारी आदि। 'फक एण्ड बैगनम्स' डिक्शनरी के अनुसार 'क्राफ्ट' का अर्थ है : कुशलता, शक्ति, क्षमता आदि। 'ए कन्साइज इटीयोलॉजिकल डिक्शनरी' के अनुसार 'क्राफ्ट' का अर्थ : शक्ति, कौशल और ज्ञान है। मेनियर विलियम्स के अनुसार शिल्प का अर्थ है : 'सुसज्जित करने की कला, सजावट, अलंकार, कलाकृति, दस्तकारी, ललित कला आदि। वामन आप्टे के अनुसार शिल्प का अर्थ है : कला, ललित कला, रचना आदि। 'मानविकी पारिभाषिक कोष' के अनुसार : रचना में भावों का गांभीर्य, विचारों की गरिमा एवं शैली का उत्कर्ष तो पाया ही जाता है, किन्तु साथ ही जब समग्र रूप से उस रचना

का मूल्यांकन करते हैं तो इन सब तत्वों की निजी अवस्थिति एवं इनके विकास का अध्ययन भी करते हैं और साथ ही इन सभी तत्वों को पारस्परिक समरस योजना एवं निर्वाह का विवेचन भी करते हैं। यह योजना का निर्वाह कलाकार की कलाविषयक निपुणता या दक्षता पर निर्भर करता है। इसे ही कला या शिल्प कहते हैं।

साठोत्तरी हिन्दी रचनाकारों ने भी शिल्प पर विशेष ध्यान दिया है। अपनी अभिव्यक्ति को अधिक सक्षम बनाने के लिए शिल्प का सचेष्ट प्रयोग किया है।

शिल्प सम्बन्धी परम्परागत मान्यताओं में बदलाव :

आज शिल्प की सीमाओं को कहानी ने तोड़ दिया है। ये मात्र फैशन न होकर कहानी की माँग है। बदलते पारिवारिक सम्बन्धों को स्वतन्त्र शिल्प-विधान द्वारा सक्षमता से चित्रित किया जाता है। नये शिल्पगत प्रयोगों ने रचना को सहज से सहजतर बनाया है। कहानी में पारिवारिक सम्बन्धों के बदलाव का यथातथ्य चित्रण है, अतः शिल्प में कृत्रिमता नहीं आई है। सम्बन्धों के बदलाव को चित्रित करते हुए कहानीकार को जो भी रूपबंध उचित लगा उसे ही ग्रहण किया है। कृष्णा अग्निहोत्री के शब्दों में - "कहानी के शिल्प में वैविध्य और अन्दरूनी शक्ति हो। फार्मूलाबद्ध शिल्प का तिलस्म टूट चुका है। कहानी बिना किसी लाग-लपेट के उभरती है।"[2] सम्बन्धों के बदलाव को पूर्ण प्रमाणिकता के साथ रूपायित किया जा सका है। प्रतीत और बिम्ब-प्रयोग ने अर्थ में बदलाव के स्थान पर दृष्टि को सचेतना प्रदान की है। आज की कहानी को शिल्पहीन कहा जाता है, परन्तु ये शिल्प-हीनता उन्हीं को प्रतीत होती है, जो कहानी को एक पूर्व निश्चित ढाँचे में फिट होते हुए देखने के आदी बन चुके हैं। कहानी का शिल्प जीवन के समान बहु आयामी हो गया है। जितने पारिवारिक सम्बन्ध हैं, कहानीकार

उतने रूपों को गढ़ सकता है अथवा किसी एक ही रूप में सम्बन्धों के कई धरातल उभारे गये हैं। पति-पत्नी, माँ-पुत्र, पिता-पुत्र, माँ-पुत्री और भाई-बहन के अनेकानेक प्रसंगों को जोडकर साठोत्तरी हिन्दी कहानी का पारिवारिक जीवन के बदलते सम्बन्धों के विघटन का यथार्थ हमारे सम्मुख उभरता है।

अभिप्राय यह है कि कहानी का शिल्प सीधा-सपाट भी हो सकता है। चित्र भाषा युक्त हो सकता है, सर्वथा विदेशी, सर्वथा देशी, शैली विहीन या शैलीग्रस्त भी हो सकता है। इसके बाद भी कहानी के शिल्प का मार्ग प्रशस्त है। साठोत्तरी कहानी में शिल्प के अनेकानेक रूपाकार हैं। शिल्प कहानीकार के कौशल की प्राणवत्ता का मुखापेक्षी होता है, किसी विशेष रूप का नहीं।

कहानी के शिल्प की सहजता को बताते हुए जैनेन्द्र का कथन है - "क्या कोई शिशु ऐसा हो सकता है, जिसके भीतर वह जटिल यंत्र न हो, जिसे मानव यष्टि कहते हैं? लेकिन एक अबोधा भी माता बन जाती है और उसे इन जटिलता का पता नहीं होता, जिसका निष्पन्न रूप उसका शिशु है।" कहानी-लेखन के बारे में उनकी मान्यता है कि "जिसने टैकनीक को जाना वह डूबा।"

बदलते पारिवारिक सम्बन्धों का शिल्प पर प्रभाव :

साठोत्तरी कहानी का शिल्प पारिवारिक सम्बन्धों के बदलाव से प्रभावित अवश्य हुआ है। कहानी में शिल्पगत उपकरण - कथानक, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, संवाद, वातावरण,

भाषा-शैली आदि का प्रयोग सम्बन्धों के बदलाव के किसी विशेष धरातल के अनुरूप ही हुआ है।"[2] आज का कहानीकार परम्परावादी शिल्प को त्याग कर रचना की बुनावट द्वारा पारिवारिक सम्बन्धों के बदलाव, विघटन को अभिव्यक्त करता है। पुनः उन्हें परिवेश से संयुक्त कर कहानी में भाषा के फंदों से बुनता है। पारिवारिक सम्बन्धों के बदलाव को कहानी संरचना के संश्लिष्ट विधान में समाविष्ट करना एक जटिल प्रक्रिया है। यह तथ्य भी निर्विवाद है कि सम्बन्धों के यथार्थ को पकड़ने की कोई सुनिश्चित दृष्टि नहीं होती है। अतः इस बुनावट में ही उसका शैली-शिल्प निहित रहता है।

कथानक का विघटन :

कहानी के प्रारम्भिक काल में कथानक से अभिप्राय घटनाओं से था, परन्तु अब जीवन का कोई 'क्षण', कोई 'सम्बन्ध' या 'सम्बन्धों का विघटन या बदलाव' कहानी का विषय बना है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में - "यह कथानक का ह्रास न होकर विकास है। कहानी के क्षेत्र में आयी यह गहराई ही कहानी की शक्ति है। कथानक में बाह्य उपकरणों के स्थान पर आन्तरिक उपकरण तथा स्थूल से सूक्ष्म तत्वों को क्रमशः अपना उपजीव्य बनाया है।"[3] डॉ. नामवरसिंह के अनुसार - 'आज कहानी में कथानक की धारणा बदल चुकी है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि कथानक की धारणा कॉन्सेप्ट में बदल गई है।"[4] फ्रांसिस विवियान के अनुसार - "आप अनुमति दें या ना दें, मैं कथानक को ठोकर मारकर समुद्र मे डुबा दूँगा ताकि वह फिर बाहर न निकले।"[5]

कथानक-ह्रास के कारण कहानीकार की सर्जनासृष्टि में कोई बदलाव नहीं आया।

कहानी की मूल शक्ति उसकी अनुभूति की स्तरीय गहनता है। यह गहनता आज के परिवर्तित सम्बन्धों में सहज प्राप्त है। जीवन में बिखराव के अनुरूप कथानक में बिखराव अत्यंत प्रकृत है। प्रयाग शुकल ने कथानक-विघटन के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है - "आधुनिक बोध का हिन्दी कहानी पर सीधा असर पड़ा है कि उसमें कथा का ह्रास हुआ है और कथानक का स्थान कथ्य ने ले लिया है।"[6] डॉ. शीतांशु के अनुसार - "कहानी में अब मोड़ और कौतुहलयुक्त कथानक का विघटन हुआ है। उसके कारण कार्य-शृंखला की सुविन्यस्तता बाधित हुई है।"[7] 'मानविकी साहित्य कोश' के अनुसार "नवीन साहित्य रूपों के लक्ष्य के साथ तथा साहित्य में नवीन तत्वों के समावेश के फलस्वरूप कथानक ने कठोर परिसीमाओं का बंधन तो तोड़ दिया है, किन्तु अपूर्व विविधता आ जाने पर भी आज मनोवैज्ञानिक या तार्किक दृष्टि से कथानक की आधारभूत एकता यथापूर्व अनिवार्य बनी हुई है।"[8]

कथानक की सूक्ष्मता :

पारिवारिक सम्बन्ध विषयक कहानियों का कथ्य अत्यंत सूक्ष्म है। अत्यंत साधारण घटना द्वारा सम्बन्धों की सूक्ष्मता को चित्रित किया जा सकता है। दूधनाथ सिंह की 'स्वर्गवासी' शिल्प की द्रष्टि से कथाविहीन कहानी है। सम्बन्धों के विषय में कहानीकार का कथानक का मंतव्य स्पष्ट नहीं हो पाता है। ज्ञानरंजन की 'सम्बन्ध' कहानी का कथानक अत्यंत सूक्ष्म है, तो मोहन राकेश की 'एक और जिंदगी' में पति-पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, वे एक नया जीवन जीना चाहते हैं पर जी नहीं पाते। यादव की 'टूटना' के पति-पत्नी अपने अहं के कारण अलग-अलग जीवन व्यतीत करते हैं।

सम्बन्धों के बदलाव का कहानियों में कथानक-विघटन की सूक्ष्मता के विवेचन के उपरांत मनःस्थितियों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

कथा ह्रास का विश्रृंखल शिल्प :

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में क्रमशः कथानक का ह्रास भी दिखायी पडता है। पहले की कहानियों में घटना का मूल्य आँका जाता था और उसे ही कथानक के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। लेकिन धीरे-धीरे घटनाहीन कहानियाँ लिखी जाने लगीं। कहानीकार का ध्यान मनोविश्लेषण के द्वारा किसी संवेदना की अभिव्यक्ति पर अधिक केन्द्रित हो गया और कहानीपन पीछे छूट गया। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का मानना है कि यह कहानी का उत्थान है और बाह्य उपकरणों को उपजीव्य बनाया गया है। उन्होंने लिखा है - "हिन्दी कहानियों के विकास के प्रथम चरण को लेकर आज की कहानी प्रगति को देखने से कथा तत्व में यह ह्रास होता चला गया है - शिल्प विधि की दृष्टि से कथानक का भौतिक ह्रास कहानी कला का उत्थान है। जहाँ कहानी अपने कथानक तत्व में बाह्य उपरकरणों से आगे बढकर आंतरिक उपकरणों तथा स्थूल से सूक्ष्म तत्वों को क्रमशः अपना उपजीव्य बनाती चलती है।"[9]

स्वातन्त्र्योत्तर कहानियों में कथानक ह्रास का कारण यह भी है कि जीवन में एक अप्रत्याशित बिखराव आया है। ऐसी स्थिति में कोई एक बार की मनःस्थिति को ही कहानी में चित्रित किया जाने लगा है। कहानी शुरू होकर एक झटके में उत्कर्ष पर पहुँच जाती है। वहीं उसका अन्त भी हो जाता है। निर्मल वर्मा की कहानियों में सम्बन्धों के तनाव को गहराई

में व्यक्त करने के लिये जहाँ वातावरण की सृष्टि गई की है, वहाँ घटना नहीं है, सिर्फ परिवेश और विचार ही हैं। 'लंडन की एक रात' या 'बीच बहस में' जैसी कहानियाँ इसका उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। रामदरश मिश्र की कहानी 'बादलों भरा एक दिन' में घटना के नाम पर सिर्फ एक दिन की तनावपूर्ण स्थितियों को चित्रण हुआ है। कथा नायक अतुल की दिनचर्या सुबह चाय के प्याले से शुरू होती और शाम को टी हाउस तक फैली है। इस पूरे दिन के तनावपूर्ण जीवन को कहानी में तटस्थता से चित्रित किया गया है। महानगर के कोलाहल भरे जीवन की निरर्थकता को चित्रित करते हुए कहानीकार लिखता है - "इण्डियन कॉफी हाउस भरा है, कहीं बैठने की जगह नहीं। आवाजें एक-दूसरे को काटती नहीं हैं। एक-एक टेबुल को घेर कर बैठे कई लोग। अलग-अलग संसारों के मनुष्य हैं। कोई किसी को नहीं सुनता, किसी को नहीं समझता। अकेला अतुल अपनी दुनिया के कुछ लोगों को खोज रहा है। चारों ओर भागती कारों, स्कूटरों और बसों की आवाजें तम्बू में बजबजाती मिली-जुली ध्वनियाँ, खाली कह-कहे प्यालों और प्लेटों की अर्थहीन खनक, पत्रकार, कलाकार, ऑफिस के बाबू अपने दिन की निरर्थकता को अर्थ देने के लिए अपने को भीड में ला पटकते हैं। परन्तु कितने अकेले लगते हैं, लोग भीड में।"[10] उन्होंने कथानक में ह्रास के शिल्प का प्रयोग किया है, इसलिए उनकी कहानियाँ आकार की दृष्टि से भी छोटी हैं।

मनःस्थितियों का चित्रण :

मनःस्थिति से अभिप्राय है कहानी के किसी पात्र की एक विशेष स्थिति में मनोदशा, मनोदशा परिवर्तित होती रहती है। पारिवारिक जीवन में सम्बन्धों की टूटन या अलगाव आने से मनोभावनायें परिवर्तित होती हैं। परिवार में सदस्यों के परस्पर अनेक सम्बन्ध होते हैं।

सम्बन्धों के बदलाव के साथ मनोस्थितियाँ बदल जाया करती हैं। आज की कहानी में भावनाओं और मानसिक स्थितियों के संदर्भ महत्वपूर्ण हैं। एक पात्र की मानसिक जटिलता दूसरे की भी हो सकती है। पुरानी और नई पीढ़ी का अन्तराल दोनों पीढ़ियों के मध्य तनाव उत्पन्न करता है। जब मन घुटता है, आक्रोश से भरता है और पात्र उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाता है तो उस स्थिति में तनाव उत्पन्न होता है। आज का जीवन तनाव का पर्याय बन गया है। मानसिक तनाव मन को असंतुष्ट करता है वह बहुत भयानक होता है। माता-पिता और संतान-सम्बन्धों में तनाव का कारण मूल्य-संघर्ष और आर्थिक वैषम्य है। ज्ञानरंजन की 'पिता' और 'सम्बन्ध' कहानी में माता-पिता और संतान के मध्य अन्तराल है। इस अन्तराल का कारण मूल्यों का बदलाव और आर्थिकता है। निरूपमा सेवती की 'टुच्चा' की नायिका परिवार के लिए एक उपकरण मात्र बनकर रह गई है। राशन से ऑफिस तक का उसका जीवन चक्र है। मृदुला गर्ग की 'मेरा' का पति अपना नियोजित जीवन जीना चाहता है। आनेवाली संतान के प्रति वह बहुत कठोर है। मोहन राकेश की कहानी 'सुहागिनें' की नायिका माँ बनना चाहती है, पर पति यह नहीं चाहता। उषा प्रियंवदा की कहानी 'पैरम्बुलेटर' में पारिवारिक विच्छेद नहीं होता है मगर दिलों के तनाव के बीच कुछ साल यूँही गुजारने पड़ते हैं। मन के तनाव के कारण घर घर नहीं लगता है, वह रह जाता है सिर्फ एक रहने का ठिकाना। उर्मिला मिश्र की कहानी 'सलाखों के उस पार' में माँ के देहान्त के बाद बाप दूसरी शादी कर लेता है, नई माँ अपने बच्चों में ही रचीपची रहती है। परिवार की बड़ी लडकी अपने आपको परिवार से अलग मानकर सिर्फ परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाए जाती है। माँ के मर जाने के बाद वह अपने आप को अकेला और निःसहाय मानती है। उन्हीं की एक और कहानी 'मर्यादा' में बहू की मनःस्थिति को दिखाया गया है। जितेन्द्र भाटिया की 'रक्तजीवी' का नायक अपना

रक्त देकर अपना पेट भरता है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि पारिवारिक जीवन की अनेक मनःस्थितियों का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। कहानी की संरचना में चरित्र-चित्रण की गुँजाइश कम रहती है। पात्र की मनःस्थितियों का कारण उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, आर्थिक कारण, परम्परा को नकारना, महानगरीय जीवन का दबाव या अन्य कोई कारण हो सकता है। पात्र के चरित्र चित्रण की कहानीकार को कम जरुरत रहती है। पात्रों द्वारा जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं के मध्य उनकी मनःस्थितियों का अंकन ही विवेच्य कहानियों का वैशिष्ट्य है।

माता–पिता और संतान–सम्बन्ध – विश्लेषण का शिल्प :

माता-पिता और सन्तान के सम्बन्धों के बदलाव को चित्रित करने में साठोत्तरी कहानीकार ने विश्लेषण-शिल्प का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक किया है। एक कुशल कहानीकार सूक्ष्म विवरणों के माध्यम से पात्र की मनःस्थिति, सम्बन्धों के बदालव और निहित कारणों को बारीकी से बुनता जाता है। उपर्युक्त स्थितियों के प्रभाव को दर्शानेवाली कहानियों का योगदान इस दृष्टि से सर्वाधिक रहा है। यह विवरण सम्पूर्ण कहानी में समाकर उसके प्रभाव की आदि से अंत तक निरन्तर वृद्धि करते हैं। विश्लेषण शिल्प के माध्यम से साठोत्तरी कहानी में माता-पिता और संतान सम्बन्धों के बदलाव को रेखांकति करते हुए कुछ उदाहरण देकर उसका विवेचन करना यहाँ उचित होगा।

दीप्ति खण्डेलवाल की 'मूल्य' कहानी माता-पिता और सन्तान के मध्य गहरे अंतराल को विश्लेषण-शिल्प में मर्मस्पर्शी रूप से प्रस्तुत करती है। माता-पिता और संतान में सम्बन्धों

के बदलाव का कारण पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के मध्य मूल्यों का अन्तराल है, जिसने उनके सम्बन्धों में दूरी, अपरिचय, टूटन का दर्द और कड़वाहट उत्पन्न की है। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत उद्धरण माता-पिता और सन्तान के बदलते सम्बन्धों का विश्लेषण करता है - "रातभर गली में कुत्ते लड़ते रहे थे और पंडित जी की नींद बार-बार टूटती रहती थी। करवटें बदलते वे सोचते रहे थे कि पहले कुत्ते नहीं लड़ते थे या उन्हें नींद ही अच्छी आती थी? घुटनों में दर्द से भी वे बेचैन हो रहे थे। पहले एक घुटने में दर्द होता था, अब दोनों में होने लगा है - यह घुटनों का दर्द जाने क्यों सन्तानों से जुड़ जाता है। पहले वह विजय से ही आहत होते थे, अब मीरा से भी होने लगे हैं। विजय और मीरा उनकी संतानें मात्र दो। पैदा तो आठ हुए थे, बचे थे केवल दो। दर्द से टीसते घुटनों को सहलाते पंडित जी के मुख से निकल पड़ता है - "अच्छा हुआ, मर गए सुसरे सब, नहीं तो आज उनका अंग-अंग टीसता होता।" आज का यह बदलता समय, ये बदलते सम्बन्ध और ये बदलते मूल्य - पंडित जी के घुटनों का दर्द जैसे सारे शरीर में फैल जाता है। प्रस्तुत कहानी में माता-पिता और सन्तान के बदलाव का कारण बदलते हुए मूल्य हैं जिनके कारण तनाव उत्पन्न होता है। माता-पिता और सन्तान सम्बन्धों का विश्लेषण शिल्प इस विवरण द्वारा स्पष्ट होता है। माता-पिता और सन्तान सम्बन्धी दो पीढ़ियों के संघर्ष की कहानी 'उषा प्रियंवदा' रचित 'वापसी' पुरानी पीढी की हार को दर्शाती हुई, पाठकों पर दर्द की छाप छोड़ जाती है। जीवन भर जो आदमी अपने परिवार के हर सदस्य को सुख-सुविधायें प्रदान करता रहा, उसकी सन्तानें उसके रिटायरमेन्ट के बाद उसे घर में रहने के लिए एक कमरा तक दे नहीं सकतीं। यहाँ तक कि पत्नी भी शहरी सुविधायें छोड़कर उनके साथ चलने को तैयार नहीं होती तब उसकी आत्मा कितनी तड़पी होगी, रोई होगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। वह वापस लौटने का विचार करते हैं तब उन्हें

न किसी ने मनाया न उनके साथ कोई जाने के लिये तैयार हुआ। उनके जाने के बाद तुरन्त सिनेमा जाने का प्रोग्राम बना लिया जाता है। जैसे उनके कारण परिवार की सारी खुशियाँ रूकी हुई थीं। गजाधरबाबू की वापसी पुरानी पीढ़ी की हार है, जिसे सम्पूर्ण परिस्थिति के विश्लेषण और चारपाई के प्रतीक से व्यक्त किया गया है।

माता-पिता और सन्तान सम्बन्धों में बदलाव का प्रमुख कारण आर्थिक दबाव है। से. रा. यात्री की 'अन्तर' कहानी में पिता-पुत्र के सम्बन्ध अर्थ के कारण महज खून के रिश्ते रह गये हैं। यदि पिता अध्ययन के हेतु पुत्र को किसी प्रकार की सहायता न दें तो पुत्र उसका बदला अवश्य लेगा। किन्तु अधिकांश पिता दूर की नहीं सोचते। वे बेटे को अपना रक्त बेचने या कुत्तों के साथ जूठन खाने को मजबूर करते हैं। कुछ पुत्र केवल अपने परिवार के सुख के लिए वृद्धावस्था में उन्हें पूरी सहायता पहुँचाने के बजाय झूठ के सहारे छोटी-छोटी चीजों से ललचाते हैं। अपने एकल परिवार का ही खर्चा जब बेटा चला नहीं पायेगा तो वह पिता के मरने-जीने की खबर क्यों लेगा। अर्थ को लेकर बाप-बेटों में निर्मित संघर्ष को कहानीकारों ने बड़े अच्छे ढंग से उभारा है। राकेश वत्स की 'बँटवारा' कहानी शीर्षक के अनुसार माता-पिता का पुत्रों के बीच बँटवारा कराती है। भारतीय अर्थ-व्यवस्था ने हमें आज मजबूर किया है कि हम अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु अपने माँ-बाप आपस में बाँट लें।

ऊपर विवेचित कहानियों के अतिरिक्त माता-पिता और संतान-सम्बन्धों के बदलाव का मनःस्थितियों - संवेदनहीनता, अलगाव, अजनबीपन और आक्रोश को बड़ी सूक्ष्मता और गहराई से दीप्ति खण्डेलवाल की 'मूल्य' कहानी, उषा प्रियंवदा की 'वापसी', से. रा.

यात्री की 'अन्तर', राकेश वत्स की 'बँटवारा' कहानियों के माध्यम से माँ-पुत्र, पिता-पुत्र और माँ-पुत्री के सम्बन्धों के बदलाव और अलगाव का स्पष्ट चित्रण हुआ है। ये कारण प्रमुख रूप से आर्थिक हैं अथवा नई और पुरानी पीढ़ी के मध्य मूल्यों की टकराहट।

परम्परागत शिल्प में मूल्य विषयक मान्यताएँ :

भारतीय साहित्य में प्राचीनकाल से ही परम्परागत मूल्य का महत्व स्वीकार किया जाता है। हमारे यहाँ मूल्यों का विवेचन मुख्यतया धर्म के सन्दर्भ में हुआ है।

रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने राम के सर्व गुण सम्पन्न चरित्र का वर्णन करते हुए कुछ गुणों का वर्णन किया है -

'इक्ष्वाकुवंशे प्रभवो रामो नाम जनै श्रृतः।
नियतोत्मा महावीर्यो धृतिमान् धृतिमान् वशी ।।
बुद्धिन्नीतिमान् वाग्मी श्रीमाज्छबृ निबर्हणः ।'[11]

इन पंक्तियों में वाल्मीकि ने राम को नियमत्मा, वीर्यवान्, कान्तिशाली, धैर्यशाली, जितेन्द्रिय, नीतिमान्, बुद्धिमान् और वाक्चतुर आदि गुणों से सम्पन्न बताया है। ये गुण परम्परागत मूल्यों की ओर इंगित करते हैं।

वस्तुतः भारतीय साहित्य अपने-अपने जीवन-मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के लिए अग्रसर है किन्तु कहानी इस दायित्व के निर्वाह में सबसे अधिक सफल हुई है। इसका कारण यह है कि पाठक अन्य विधाओं की तुलना में कहानी पढ़ना कहीं अधिक पसन्द करता है।

आज का युग संघर्ष का युग है। जीवन में तरह-तरह के मोड़ आते जा रहे हैं। आज का आदमी चौराहे पर खड़ा परम्परागत परिपाटी से ज्यादा नयी खोज की ओर मुड़ रहा है। आज की कहानी जीवन की अनुभवशीलता से निर्मित यथार्थ को प्रस्तुत करती है। नयी कहानी के सन्दर्भों में डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है - "पहले कहानी अधिकांशतः कल्पना पर आधारित होती थी। अब यथार्थ को लेकर चलती है। अतः पहले की कहानी पुरानी है और आज की कहानी नयी है। 'नयी कहानी' में तलाश पात्रों की नहीं, यथार्थ की है, पात्रों के माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति की। पहले कहानी कला मूल्यों को लेकर लिखी जाती थी, अब जीवन-मूल्यों को लेकर, पहले कहानी झूठी थी, अब सच्ची है।"[12]

आज की कहानी ने काल्पनिकता का परित्याग कर ठोस सत्य को अपना विषय बनाया है। यह सत्य हमारी रुढ़ियों, परम्पराओं, मान्यताओं, रीति-रिवाजों आदि के साथ-साथ मूल्यों में भी दृष्टिगोचर होता है। टूटते पारिवारिक सम्बन्ध, बनते हुए नवीन सम्बन्ध, नारी का आर्थिक संघर्ष, नारी का परम्परागत प्राचीन भावभूमि से निकलकर नवीन भाव-भूमि में प्रवेश, मानव के अस्तित्व का प्रश्न इस परिवर्तन के कुछ आयाम हैं, जो सातवें दशक से कहानियों में पारिवारिक सम्बन्धों को लेकर अभिव्यक्त हुआ है।

आज कोई भी कहानीकार इन परम्परागत मूल्यों से अछूता नहीं रह सकता क्योंकि वह इसी समाज में जन्म लेता है। इसी घेरे से आगे बढ़ता है। इन्हीं परम्परागत मूल्यों से जुडा रहता है। यहाँ की हर एक परिस्थिति से मिला हुआ होता है। फिर इससे हटकर चलना उसके लिए असम्भव ही है। फिर भी दलते युग और समय के अनुसार मूल्यों और दृष्टिकोण

में भी परिवर्तन आता है। यह संक्रांति काल है, जब मनुष्य पुरातन और गलित को पूरी तरह छोड़ नहीं पाया हैं और नये को पूरी तरह अपना नहीं पाया है।

प्राचीन काल में धर्म मानव के परम्परागत मूल्यों का स्रोत था, किन्तु आधुनिक काल में वैज्ञानिक दृष्टि एवं औद्योगिक क्रांति ने धर्म के महत्व के कुछ नये मानव मूल्य अर्जित किये हैं। कुछ मूल्य अपना स्थायी महत्व रखते हैं, ये शाश्वत मूल्य कहलाते हैं, दूसरी ओर कुछ काल सापेक्ष होते हैं, और कुछ देश सापेक्ष। ये सभी मूल्य समाज की मान्यताओं और धारणाओं के अनुसार बनते-मिटते और बदलते रहते हैं, किन्तु शाश्वत मूल्य न कभी बदलते हैं और न मिटते-बनते हैं। रामदरश मिश्र की कहानी 'लाल हथेलियाँ' परम्परागत एवं बदलते मूल्यों की तुलना करनेवाली सशक्त कहानी है। कहानी में एक ऐसे युवक के परिवार का चित्रण है जो परिस्थितिवश दो विवाह करता है। उसकी पहली पत्नी ममता है जो केवल आठ वर्ष की आयु से सुभाष की गृहस्थी संभालती है। वह पुराने संस्कारों का प्रतिनिधित्व करती है। सास के मरने के बाद वह सब करती है, जिसकी आदर्श भारतीय नारी से अपेक्षा की जाती है। परन्तु चमक-दमक के आकर्षण में पड़कर सुभाष दूसरा विवाह करता है। वह स्कूल में अध्यापक है। उसकी नई पत्नी ज्योत्सना आधुनिक नारी की प्रतिनिधि है। फिंजूल खर्चे की शौकीन है। वह अपने साज-श्रृंगार पर खोल कर खर्च करती है।

इन दोनों परिणयों के तुलनात्मक चरित्र चित्रण द्वारा ही पारिवारिक मूल्यों के दो किनारों को सांकेतकि रूप से चित्रित किया गया है। 'विष्णु प्रभाकर' की कहानी 'राखी' बदलते मूल्यों की कहानी है, जो परंपरागत भारतीय मूल्यों और बदलते आधुनिक मूल्यों के

समन्वय को चित्रित करती है। भगवतीचरण वर्मा की कहानी 'विवशता' नारी के भारतीय संस्कारों की सुंदर छानबीन करती है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कहानीकार के दृष्टिकोण एवम् चिन्तन-दिशा में बड़ा परिवर्तन आया है, जिससे कहानी का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ है। फलस्वरूप कहानी ने पुराने परिधान को त्यागकर नया वेश धारण कर लिया है। उसमें शिल्पगत परिवर्तन के साथ अभिव्यक्ति की दिशा भी बदली है। जहाँ घटनाएँ काल्पनिक तथा अमानवीय तत्वों पर आधारित होती थीं, वहाँ अब वे स्वानुभूत हैं। उनमें जीवनबोध की नई दिशा है। वे आधुनिकता की सीमा के निकट हैं। इस आधुनिकता का सम्बन्ध आज की वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं औद्योगिकीकरण की सभ्यता से है। इस आधुनिकता के बोध का स्वरूप समयगत परिस्थितियों के साथ परिवर्तित होता रहता है।

साठोत्तरी कहानियों में आज की जिन्दगी को चित्रित किया गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे जीवन मे जिस गति से परिवर्तन आया है, पहले के जीवन में दृष्टिगत नहीं होता था। इन परिवर्तित परिस्थितियों ने जीवन के रूप में ही नहीं, वरन् साहित्य के रूपबन्ध एवं साहित्यकार की रुझान में भी परिवर्तन उपस्थित किये हैं। समाज में इन परिवर्तनों के उपस्थित हो जाने के कारण जन-सामान्य के जीवन, जीवन के प्रति दृष्टिकोण, आस्था, जीवन के अर्थ एवं मूल्य - सभी में ठोस परिवर्तन हुआ है, जिससे प्राचीन निष्ठाओं के स्थान पर नवीन विश्वासों को जन्म मिला है। इन्हीं निष्ठा और विश्वास के तत्वों ने व्यक्ति की मानसिक स्थिति में भी परिवर्तन कर दिया है, जिससे कथा के कथानक में आदर्श, आदर्शोन्मुख

यथार्थ के स्थान पर जीवन के सत्य जो नित्य प्रति भोगा जा रहा है, की अभिव्यंजना को प्राथमिकता दी जाने लगी। कहानियाँ अन्य की न होकर केवल हमारी ही रह गईं।"[13]

आज की कहानी वस्तु तथा शिल्प की संश्लिष्टता पर बल देकर प्रगति तथा प्रयोग के क्षेत्रों में दोनों दिशाओं में नए स्तरों को खोज रही है, नए सन्दर्भो को आँक रही है, नए स्वरों को ध्वनित कर रही है। कहानी जो छोटी होने के कारण पहले साहित्य की एक उपेक्षित विधा थी, आज संकुल जीवन को पकड़ने में सबसे अधिक सशक्त माध्यम है। आज की कहानी के कथ्य और शिल्प दोनों में आशातीत प्रगति ही नहीं हुई है, वरन् दोनों के रूपबन्ध में आमूल परिवर्तन भी हो गया है।

सांकेतिकता :

पारिवारिक जीवन में कुछ सम्बन्ध बडे नाजुक होते हैं, जहाँ संकेत ही मनोभाव को स्पष्ट कर देता है। जैसे माता-पुत्री सम्बन्धी कमलेश्वर की कहानी 'तलाश' की नायिका सुमी मम्मी के कमरे में जाकर देखती है - "ममी शायद बहुत थक गई है। वह पलंग पर बेखबर सो रही थी। जुडे के पिन सिरहाने रखे हुए थे। दाहिनी तरफ वाले तकिये पर एक हलका सा गड्ढा था। पलंग के सिरहाने वाली पाटी पर एक सिगरेट दबाकर बुझाई गई थी। टुकडा नीचे पड़ा था।"[14] पापा के मरने के बाद युवा बेटी सुमी ममी के बदलते व्यवहार और भावनाओं को समझती है। माँ-बेटी के नाजुक रिश्ते को कहानीकार ने बडे सार्थक और हलके संकेतों से अभिव्यक्त किया है। इसी प्रकार गिरिराज किशोर की कहानी 'चूहे' की सविता एम.ए. की छात्रा है। माँ सविता को उसके सहपाठी रंजी से मिलने-जुलने और नोटस् के लेन-देन को

लेकर सदा झिड़कती रहती है, यहाँ उसे अपशब्द भी कह देती है परन्तु वही माँ रात को सोते समय बाबूजी से कह रही थी – "कहें तो बीच का दरवाजा बन्द कर दूँ?" प्रस्तुत उद्धरण में संकेत इतने स्पष्ट हैं कि विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है।

भाषा का खुलापन :

साठोत्तरी कहानीकारों ने सम्बन्धों के बदलाव को व्यक्त करते समय कहानी की भाषा में खुलापन रखा है अर्थात् उसमें किसी अश्लील प्रयोगों को स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि नैतिकता के बदले मानदण्डों से भाषा भी प्रभावित हुई है। स्थापित नैतिक मूल्यों, मान्यताओं को तोड़ने और नयी संवेदना को वहन करने के लिए बेलौस भाषा का बेहिचक प्रयोग हुआ है। यहाँ तक कि यौन चित्रण में भी कहानीकार को अन्य भाषा के शब्दों का मुँह नहीं ताकना पड़ता है। भाषा का यह खुलापन परिवेश की ही देन है।

दूधनाथसिंह की कहानी 'रीछ' में पति-पत्नी सम्बन्ध में उपलब्ध होता है। पत्नी पति से कहती है – "लेकिन तुम लोग। मैं जानती हूँ... तो एक बार वह भंगिन भी तुम्हें मुझसे ज्यादा रुचेगी। लेकिन मैं...।" विवाहेत्तर सम्बन्धों मं खुली भाषा का रूप मृदुला गर्ग की कहानी 'कितनी कैदें' में भी हुआ है। खुली और बेलौस भाषा का प्रयोग मोहन राकेश की 'सुहागिनें' में हुआ है। और दीप्ति खंडेलवाल की 'क्षितिज' और 'बेहया' में भी भाषा का खुलापन देखने को मिलता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी कहानी ने विचार, शिल्प और वस्तु आदि कई एक स्तरों

से बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। यद्यपि स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकारों में पूर्ववत् कहानीकारों की भाँति बड़े व्यक्तित्व नहीं बन पाए हैं। फिर भी इधर के कई कहानीकारों ने कहानी की परम्परा को काफी आगे की मंजिल पर पहुँचाया है। पूर्ववर्ती कहानी घटना प्रधान थी, परन्तु अब कहानी घटनाओं और स्थितियों के विवरण, निरूपण और संयोजन द्वारा मानवीय सम्बन्धों, उनके अन्तर्विरोधों और विसंगतियों आदि के संकेत करती है। प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय और यशपाल के समान समसामयिक कहानी का शिल्प पूर्वनिर्धारित नहीं है। कहानीकार प्रायः व्यक्ति और समाज की वास्तविकता को आदर्श या सिद्धांत के आवरण मे ढँक देते थे, परन्तु हमारी विवेच्य कहानियों में शिल्प में परिवर्तन का कारण पुरातन विश्वासों और मूल्यों के आकर्षण का समाप्त होना है।

साठ के बाद के कहानीकार ने 'कथानक' को महत्व न देकर 'कथ्य' को प्रमुख स्थान दिया और इस प्रकार कहानी में कथानक विघटित हो गया। कथानक के नियोजन में आरंभ, चरमसीमा और अंत का कोई निश्चित विधान नहीं रहा है। वस्तुतः 'हिन्दी कहानी' ने अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, जिनका चिन्तन (विचार), शिल्प (बुद्धिपक्ष) एवं कथ्य (वस्तुपक्ष) आदि की दृष्टि से अपने विशिष्ट स्थान है। नवीन शिल्पगत प्रयोगों के माध्यम से कहानी का रूप परिमार्जित एवं परिष्कृत ही हुआ है। उसमें नवीन विचारों एवं दर्शन को आत्मसात् कर पुनः अपने रूप के अनुरूप प्रस्तुत करने की क्षमता का भी विकास हुआ है। वह एक ओर समाज का एक सफल एवं सशक्त माध्यम बन गई है, तो दूसरी ओर साहित्य का सजीव एवं सक्रिय अंग भी।"[15] किन्तु संबंधों के बदलाव से कथ्य में अनेक मोड आ जाते हैं। चरित्र-चित्रण की अपेक्षा पात्रों की बदलती मनःस्थितियों और मानसिक द्वन्द्व की ही अभिव्यक्ति की

गई है, क्योंकि सम्बन्धों का बदलाव मनःस्थितियों को बुरी तरह झकझोर देता है। 'चरित्र' और 'वस्तु' हमारी विवेच्य कहानियों में प्रमुख स्थान नहीं रखते बल्कि सम्बन्धों के बदलाव की इंगिति कहानी का केन्द्र-बिन्दु है। कहानी का अन्त प्रायः संकेतात्मक होता है, क्योंकि जब सम्बन्ध ही निरन्तर बदलाव की स्थिति में है तो अंत कैसे निश्चित हो सकता है। कहानी के शिल्प में ही परिवर्तन जीवन-पद्धति में होने वाले बदलावों के समानान्तर ही है। माता-पिता और संतानों के सम्बन्धों के बदलावों को सूक्ष्म रूप से विवरणों द्वारा विश्लेषित किया गया है। विश्लेषण द्वारा सम्बन्धों एक-एक रेशे को उधेड़ दिया जाता है। माता-पिता और संतान सम्बन्धों के अपेक्षाकृत विवाहेत्तर नर-नारी सम्बन्ध अधिक ग्रंथिल है। दाम्पत्य-सम्बन्ध, विवाहेत्तर सम्बन्धों की तुलना में कम उलझे हुए होते हैं। इस में एक ओर परम्परागत मूल्यों के प्रति क्षुब्ध आक्रोश का स्वर सुनाई देता है तो दूसरी ओर कुछ नवीन मूल्यों की सर्जना का संकेत भी मिलता है। साठोत्तरी कहानीकारों ने बदलते हुए भारतीय परिवेश, समाज की विषमताओं, विसंगतियों, विद्रूपताओं को अपनी कहानियों में चित्रित करने का प्रयास किया है। इसके लिए उसने हर प्रकार के आरोपण को अस्वीकार किया है और व्यक्ति को आज के परिवेश में रखकर देखा है। इसलिए आज की कहानी में शाश्वत मूल्यों की जगह मानवीय मूल्यों की चर्चा अधिक मिलती है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् एक साथ अनेक कहानीकार उभर कर आए, जिन्होंने अपनी कहानियों में मनुष्य के भीतर पुरातन और नूतन के मध्य चल रहे इस संघर्ष को अभिव्यक्त किया है।

मूल्य परिवर्तन के प्रेरक तत्वों से हिन्दी कहानी मे परिवर्तित मानवीय संबंधों के खोखलेपन की तीव्र अनुभूति की अभिव्यक्ति :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाज में व्यक्ति का भ्रम बराबर टूटता रहा है। उसने स्वतंत्र भारत के लिए जो स्वप्न देखे थे, वह एक के बाद एक छिन्न-भिन्न होते जा रहे थे। काल्पनिक स्वप्न-जगत् आज किसी को आकर्षित नहीं कर सकता क्योंकि जीवन-जगत् की सच्चाई चारों ओर मूँह बाए सामने खड़ी है इसीलिए कहानीकार के पास भी उस सच्चाई से भागने का अवकाश नहीं। कहानीकार को इतना कुछ कहना होता है कि वह बड़ी तीव्रता से अपने कथ्य की ओर भागता दिखलायी देता है। आज उसे कल्पना के रंग भरकर अपने पात्रों, घटनाओं और संदर्भों को सजाने की आवश्यकता नहीं पड़ती वरन् अनुभूति की गहनता और तीव्रता उसे मानव-मन की पर्त-दर-पर्त उघाड़ने में सहायक बन जाती है। पहले संयुक्त परिवारों में पारिवारिक शिष्टाचार, तीज-त्यौहार, उत्सव और पारम्परिक आत्मीयता में छिपा-दबा रह जाता था, वह सब एकदम बेनकाब हो गया है और उसे आज का कहानीकार बेलौस निर्भय होकर अभिव्यक्त कर देता है जिसके कारण उसकी लेखनी अधिक धारदार हो गई है।

इस समय मनुष्य एक विचित्र चौराहे पर खड़ा हुआ था जिसकी दिशायें थी विभाजन, मोहभंग, यांत्रिकता, विसंगतियाँ, परिवारों का विघटन और राजनीतिक भ्रष्टाचार। यही मानव कहानीकार की दृष्टि का केन्द्र रहा है। इलाचन्द्र जोशी ने कहा है - "जिस युग में मानवीय मूल्यों और सम्बन्धों की नींव ही भूकम्पी झटकों से हिल रही हों और उनके सारे ढाँचे ही कभी तडाक-तड़ाक करते हुए और कभी हरहराते हुए टूटते चले जा रहे हों, वहाँ कहानीकार

अपनी दृष्टि को 'वस्तु' से हटाकर यदि व्यक्ति पर ही केन्द्रित करने पर तुल जाए तो इस पर आश्चर्य प्रकट करने या इस बात से दुःखी होने के लिए क्या कारण रह जाताहै ?... मूल्यों का विघटन व मानवीय सम्बन्धों का विच्छेद ही प्रचण्ड वस्तु सत्य है।"[16]

स्वतन्त्रता व विभाजन के दौरान उत्पन्न आतंकपूर्ण स्थिति, साम्प्रदायिक विभीषिका, नोच-खसोट से चरमराते सम्बन्धों की कई संवेदनशील कहानीकारों ने मार्मिक अभिव्यक्ति की है। मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', महिप सिंह की 'पानी और पुल', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'पतझड़', भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया है', राजेन्द्र यादव की 'तलवार पंच हजारी' आदि अन्य कहानियाँ विभाजन के बाद टूटे मूल्यों और सम्बन्धों की दर्दनाक दास्तान प्रस्तुत करती है।

साठोत्तरी कहानीकारों ने जिस सामाजिक वातावरण में होश संभाला था उसमें मानवीय सम्बन्धों के सारे सूत्र टूटे हुए थे और जो बचे हुए थे वे किसी विशिष्ट स्थिति और व्यवस्था से चिपके हुए थे। इन कहानीकारों ने यह महसूस किया कि मानवीय सम्बन्धों की शोकान्तिका उस 'व्यवस्था' में है, जो सम्बन्धों को अपने क्रूर पंजों से दबा रही है। संबंधों की अराजकता के प्रति वे अपना क्षोभ व आतंक प्रकट करते हैं। किन्तु सम्बन्धों के विघटन से टूटकर किसी तथाकथित शून्यवत दुनिया में प्रश्रय नहीं लेते। इसका मतलब यह नहीं है कि ये कहानीकार मानवीय सम्बन्धों के बारे में कुछ अपने आदर्शवादी सिद्धान्त बनाना चाहते हैं, बल्कि सम्बन्धों की कल्पना करते हैं। सम्बन्धों से इन्कार का मतलूब मिथ्यात्व को तोड़ देना है।"[17]

सन् 1947 में हमें स्वतन्त्रता मिली और तभी से देश में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। परिवर्तन एकदम नहीं होता। सन् 1947 में मिली स्वाधीनता के परिणामस्वरूप जो परिवर्तन होने आरम्भ हुए, वे सन् 1950 तक लक्षित होने लगे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व हमने जो स्वप्न संजोए थे, जो प्रबल आकांक्षाएँ थीं, वे सब आजादी के पश्चात् ध्वस्त होती दिखाई दीं। हमारे सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में अनेक समस्याएँ खड़ी हो गईं। वैसे भी सन् 1950 के आसपास की कहानियों में कथ्य एवम् शिल्प की दृष्टि से बडा परिवर्तन आया। इसी परिवर्तन को लक्ष्य करके डॉ. भेरूलाल गर्ग ने लिखा है - "स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी अपनी पूर्ववर्ती कहानी से संवेदना और शिल्प दोनों से बहुत भिन्न हो गई। स्वतन्त्रता से पहले कतिपय अपवादों को छोड़कर हिन्दी कहानी एकांगी और आदर्शोन्मुख थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् यही आदर्शवादिता और एकांगिकता यथार्थवादी एवं अनेकांगी हो गई और हिन्दी कहानी का रूपबन्ध सर्वथा परिवर्तित हो गया।"[18] 'नई कहानी' आगे चलकर समानान्तर कहानी, सचेतन कहानी, साठोत्तरी कहानी और अ-कहानी बन गई। कहानी के ये विभिन्न नाम उसकी विशेषताओं को लेकर बदलते रहे।

नए कहानीकारों में प्रमुख हैं - राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, कृष्णबलदेव वेद, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय, अमरकान्त, धर्मवीर भारती, शैलेष मटियानी, ज्ञानरंजन, गिरिराज किशोर, रवीन्द्र कालीया, कृष्णा सोबती, राजेन्द्र अवस्थी आदि। इन कहानीकारों की सबसे बड़े विशेषता शिल्प की सशक्तता है। अपनी अनुभूति को एक नए ढंग से कहने में ये सिद्धहस्त हैं। इनकी कहानियों में

स्वातन्त्र्योत्तर व्यक्ति जीवन की विवशतापूर्ण छटपटाहट, नवीन भावबोध और अभिव्यक्ति की कलात्मकता का सुन्दर चित्रण हुआ है। साथ ही साठोत्तरी कहानी ने प्राचीन परम्परागत मान्यताओं, पद्धतियों, सार्थकताओं और सम्बन्धों को पूर्णतः नए ढंग से व्याख्यायित करने में सफलता प्राप्त की है।

मानवीय सम्बन्धों के परिवर्तन की मुख्य इकाई परिवार है। परिवार में स्थापित नैतिकता के कई मूल्य खोखले और नकारा साबित हुए हैं। व्यक्ति और उससे सम्बन्धित व्यक्तियों के आर्थिक, मानसिक व शारीरिक सम्बन्धों मे कई दरारें पड़ गई हैं। संयुक्त परिवार से आगे केवल परिवार के सम्बन्धों में टूटते मूल्यों के संघर्ष को चित्रित करने वाली कई कहानियाँ साठ के बाद लिखी गईं।

सार्थकता और सफलता :

कहानी का यह दुर्भाग्य है कि वह मनोरंजन के रूप में पढी जाती हैं और शिल्प के रूप में आलोचित होती है। यदि मनोरंजन उसकी सफलता है तो शिल्प उसकी सार्थकता।

नये कहानीकारों में से बहुतों ने आजकल कहना शुरु कर दिया है कि इस पीढ़ी के कहानीकारों में मानवीय मूल्यों के संरक्षण की उत्कट प्यास है। इतना ही नहीं बल्कि आज की कहानी नयी भावभूमियों का सृजन भी कर रही है। इतना ही कहना काफी नहीं है कि अमुक कहानी बहुत अच्छी है या अमुक कहानी सफल हैं। इस अच्छेपन और सफलता का अधिक ठोस और युक्तिसंगत रूप में उपस्थित करने की आवश्यकता है। आज कहानी की 'सफलता' का अर्थ है, कहानी की 'सार्थकता'। आज किसी कहानी को शिल्प की दृष्टि से

सफल होना ही काफी नहीं है बल्कि वर्तमान वास्तविकता के सम्मुख उसकी सार्थकता भी परखी जानी चाहिए। कहानी शिल्प सम्बन्धी आलोचनाओं ने नयी कहानी की जीवनी शक्ति का अपहरण कर उसे निर्जीव 'शिल्प' ही नहीं बनाया है किंतु उस शिल्प को विभिन्न अवयवों में बाँट दिया है। लिहाजा, हम कहानी को 'कथानक', 'चरित्र', 'वातावरण', 'भावनात्मक प्रभाव', 'विषयवस्तु' आदि अलग-अलग 'अवयवों' के रूप में देखने को अभ्यस्त हो गये हैं।

कहानी की सार्थकता की बात आती है तो इसका यह अर्थ है कि कहानी हमारे जीवन की छोटी-छोटी घटना में भी अर्थ खोज लेती है या उसे अर्थ प्रदान कर देती है। इस युग में जब कि 'निरर्थकता' की भावना व्यापक रूप में फैली हुई है और एक वर्ग के लोगों द्वारा फैलाई जा रही है, वहाँ लघुता में निरर्थकता का खतरा सबसे अधिक है। कहानी की सृष्टि इसी लघुता को सार्थकता प्रदान करने के लिए हुई थी। इस दृष्टि से भीष्म साहनी सबसे सफल कहानीकार हैं। उनकी कहानियाँ अत्यन्त गठित होती हैं, साथ ही प्रायः किसी न किसी प्रकार की विडम्बना को व्यक्त करती हैं और यह विडम्बना किसी न किसी रूप में हमारे वर्तमान समाज के व्यापक अन्तर्विरोध की ओर संकेत करती है। उन्हीं की कहानी 'चीफ की दावत' कहानी में 'संकट' से ही कहानी शुरु होती है।

"अब घर का फालतू सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई, माँ का क्या होगा?" 'चीफ की दावत' में अपनी निरक्षर और बूढ़ी माँ ही एक समस्या बन गईं, जैसे घर के 'फालतू सामान' बल्कि सामान से भी बड़ी समस्या। सामान को छिपाना तो आसान है मगर इस

जीवित सामान का क्या करें ? चीफ ने माँ को देखा ही नहीं बल्कि बुरी हालत में देखा। शामनाथ की घबराहट के बावजूद स्थिति सुधर गई। चीफ माँ से स्वयं मिले। और अंत में शामनाथ ने देखा कि जिस 'सामान' को छिपाने के लिए उन्होंने इतनी परेशानियाँ उठाईं, वह खुल ही नहीं गया बल्कि हितकर भी साबित हुआ।

इससे स्पष्ट हो सकता है कि "एक समर्थ कहानीकार किस प्रकार जीवन के अनेक स्तर उद्घाटित करता हुआ उसकी व्याप्ति को मानवीय सत्य की सीमा तक पहुँचा देता है। ऐसे अर्थगर्भत्व को मैं सार्थकता कहता हूँ।"[19]

राजेन्द्र यादव की कहानी 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'खेल-खिलौने', 'कमजोर लड़कियाँ', मोहन राकेश की 'नये बादल' कहानी संग्रह की कहानियों में अपने आस-पास के वातावरण में उड़ती हुई कहानियों को पकड़कर उसे तेजी के साथ व्यक्त किया गया है। बड़ी ईमानदारी के साथ मोहन राकेश ने स्वीकार किया है कि हमारी पीढी ने यथार्थ के अपेक्षाकृत ठहरे हुए अर्थात् वैयक्तिक और पारिवारिक रूप को अपनी रचनाओं में अधिक स्थान दिया है, जो समूची पीढ़ी के लिए तो सच नहीं है लेकिन कई कहानीकारों पर ठीक बैठता है। यात्रावर को अपनी यात्रा में उड़ती हुई कहानियों क़ा टूटा हुआ सत्व ही मिल पाया है, जिसे चाहें तो ठहरा हुआ भी कह सकते हैं। और वहाँ हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जो कुछ हाथ लग जाय या दृष्टि में पड जाय वह सब सार्थक नहीं है। हर घटना में अन्तर्विरोध को लक्षित करना एक बात है लेकिन युग के मुख्य अन्तर्विरोध के प्रवाह में सार्थक घटनाओं को लक्षित करना बिल्कुल दूसरी बात है। कहानीकार की सार्थकता इस बात में है कि वह अपने युग के मुख्य सामाजिक

अन्तर्विरोध के संदर्भ में अपनी कहानियों की सामग्री चुनता है।

नवीनता की चर्चा करते हुए डॉ. धनंजय वर्मा ने लिखा है – "नई कहानी में समाज, यथार्थ और जीवन मात्र एक वस्तु और तथ्य है, सत्य है और यह सत्य तभी बनता है जब यह हमारे सम्बन्धों का आधार बन जाता है। इसलिए उसमें समाज नहीं, सामाजिक सम्बन्धों और सिर्फ बदलते रूपों का, घटनाओं का नहीं, पूरे परिवेश का, व्यक्ति का नहीं, उसकी मनःस्थिति का महत्व है। साठोत्तरी कहानी सामाजिक सम्बन्धों की सारी प्रकृति, उनके बदलते हुए 'एम्फेसिस' और 'शिफ्ट' उनके व्यापक परिवेश और सन्दर्भ और बदलती हुई मनःस्थिति की कहानी है। अपने इस कथ्य के प्रति उसका एप्रोच, निर्वाह और दृष्टिकोण रुढ़ नहीं हो गया है, बदलता चल रहा है और यह बदलते चलना ही उसकी सार्थकता और पहचान है।"[20] देखते ही देखते इस जीवन के चित्रकार नवोदित कहानीकारों ने कहानी के क्षेत्र में अपनी जगह बना ली। यह सफलता केवल नई सामग्री की सफलता नहीं है, बल्कि वर्तमान जीवन के एक सार्थक सत्य को पहचानने की सफलता है।

****

सन्दर्भ सूचि

1. ज्ञानवती अरोड़ा - बदलते पारिवारिक सम्बन्धों का समसामयिक कहानी के शिल्प पर प्रभाव - पृ. 253
2. नयी कहानी का स्वरूप विवेचन - डॉ. इन्दु रश्मि - पृ. 257
3. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - आधुनिक हिन्दी कहानी
4. डॉ. नामवरसिंह - कहानी : नयी कहानी - पृ. 42
5. फ्रांसिस विवियान - Education Social Science
6. प्रयाग शुक्ल - बदलते पारिवारिक सम्बन्धों का समसामयिक कहानी के शिल्प पर प्रभाव से उद्धृत - पृ. 259
7. डॉ. शीतांशु - बदलते पारिवारिक सम्बन्धों का समसामयिक कहानी के शिल्प पर प्रभाव से उद्धृत - पृ. 259
8. मानविकी साहित्य कोश
9. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - आधुनिक हिन्दी कहानी - पृ. 82
10. रामदरश मिश्र - खाली घर - ज्ञान भारती प्रा. लि., दिल्ली. प्र.सं. 1969 पृ. 140
11. वाल्मीकि रामायण - पृ. 1,8,10
12. डॉ. इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी कहानी अपनी जबानी - पृ. 31
13. डॉ. राधेश्याम गुप्त - हिन्दी कहानी का शिल्प विधान -पृ. 75
14. कमलेश्वर - तलाश
15. डॉ. राधेश्याम गुप्त - हिन्दी कहानी का शिल्प विधान - पृ. 82
16. इलाचन्द्र जोशी - सही आदमी की तलाश, माया - पृ. 1965
17. धनंजय वर्मा - कहानी के बदलते तेवर - राष्ट्रवाणी, अप्रैल-मई-1970, पृ. 47
18. डॉ. भेरूलाल गर्ग - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन- पृ. सं. 1979, पृ. 15
19. नामवर सिंह - कहानी : नयी कहानी - पृ 34
20. महेशचन्द्र दिवाकर - बीसवीं शती की हिन्दी कहानी का समाज - मनोवैज्ञानिक अध्ययन से उद्धृत - पृ. 57